प्रसंगशः

आलोक मेहता

गड्ढे खोदने-भरने की मजबूरियां

मेरे बचपन के प्रारंभिक 12 वर्ष गांव के रहे हैं। ऐसे गांव – जहां दूर तक सड़क नहीं होती थी। पगडंडियों या 3 किलोमीटर दूर रेल लाइन की पटरियों के किनारे पैदल या साइकिल से 20-25 किलोमीटर दूर किसी कस्बे में पहुंचा जा सकता है। गांव में दो-चार बावड़ियां होती थीं। कोई बड़ा तालाब भी नहीं। इसलिए शिक्षक पिता, गांव के बड़े-बूढ़े, स्त्रियां और बच्चे कभी पगडंडियों के रास्ते के लिए मिट्टी खोदते-डालते या कभी पानी कम होने पर बावड़ी से मिट्टी निकाली जाती या वर्षा ऋतु के आस-पास बड़े गड्ढे खोदकर पानी इकट्ठा कर लिया जाता। एक बड़े कमरे वाला छोटा-सा स्कूल। मिट्टी-कच्ची-पक्की ईंटों से स्कूल के इस कमरे की मरम्मत होती। इससे लगे छोटे कमरे में रसोई बनती और स्कूल खाली होने के बाद रात को उसी हॉल में अपनी चारपाई लगती थी। वर्षा ऋतु में आस-पास के गड्ढों में पानी भी भरता था। उसकी सफाई में भी मेहनत लगती लेकिन तब गड्ढा खोदने-भरने के लिए बच्चे होते हुए भी हमें महात्मा गांधी और विनोबा भावे के आदर्शों का पाठ पढ़ाकर 'श्रमदान' का महत्व समझाया जाता। पिता जी – मास्टर साहब की बात मानकर गांव के लोग भी 'श्रमदान' करके खुश रहते। उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी। पिछले 50 वर्षों में वह गांव भी बदल गया है। अब वहां तक जीप-कार जाने लायक कच्ची-पक्की सड़क बन गई है। स्कूल का रंग बदल गया है – एक कमरे के बजाय आठ-दस कमरे बन गए हैं। थोड़ी पढ़ाई और विकास हुआ – लेकिन श्रम के बदले मजदूरी मिलनी कठिन हो गई। लोग गांव से दूर शहर जाने लगे और जो पारिवारिक मजबूरियों के कारण न जा सकते हों, उन्हें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत कम से कम एक सौ दिन की मजदूरी मिल जाती है।

गांवों में श्रम के बदले जब मजदूरी मिलनी मुश्किल हो गई तब मनरेगा ने कम से कम सौ दिन की मजदूरी देकर गरीबों का भला किया लेकिन ऐसी योजना को ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश द्वारा गड्ढे खोदने और भरने की योजना बताना समझ से परे है

मतलब गांव में श्रम का अपना महत्व हमेशा रहा और रहेगा। मुझे कष्ट भारत सरकार के समझदार आर्थिक विशेषज्ञ ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश की एक टिप्पणी से हुआ। एक तरफ जयराम के अपने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, पार्टी अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी, महासचिव राहुल गांधी, कोषाध्यक्ष मोतीलाल वोरा लगातार महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को सर्वाधिक उपयोगी तथा गौरवशाली बताते रहे और 2009 कांग्रेस की चुनावी सफलता की एक वजह यह योजना भी रही। दूसरी तरफ जयराम रमेश अब कह रहे हैं कि 'इस योजना के तहत गांव में गड्ढे खोदने और भरने का कोई लाभ नहीं है। अब कुशल कारीगर (स्किल्ड लेबर) तैयार करने पर अधिक बजट रखा जाना चाहिए।' कुशल कारीगर तैयार करने के लिए भी अधिक धनराशि के प्रावधान का सुझाव एक हद तक ठीक माना जा सकता है लेकिन गांवों में गड्ढे खोदने और भरने के काम और मजदूरी के लिए दी जाने वाली धनराशि को अनुचित तथा फिजूलखर्ची कहा जाना गलत है। इस योजना के तहत पिछले 10 वर्षों में लगभग 5 खरब रुपए खर्च हो गए होंगे और करीब 5 करोड़ से अधिक परिवारों को रोजगार का लाभ मिल रहा होगा। कुछ राज्यों में 'मनरेगा' की इस रोजगार योजना में कहीं-कहीं धांधली, भ्रष्टाचार और अदूरदर्शितापूर्ण काम की शिकायतें भी आई हैं लेकिन देश में 6 लाख गांव हैं और छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, ओडिशा, झारखंड, बिहार जैसे कई राज्यों के गांवों में लाखों गरीब ग्रामीणों को न्यूनतम मजदूरी का लाभ भी मिला है। पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों से पलायन भी कम हुआ है। इसी योजना के कारण अब पंजाब, असम, दिल्ली, मुंबई में बाहरी मजदूर मिलना भी थोड़ा मुश्किल हो गया है।

सवाल यह है कि रोजगार गारंटी के इस अभियान में श्रम का सही उपयोग न होने के लिए कौन जिम्मेदार है? जयराम रमेश जी तो कांग्रेस की सर्वोच्च कोर कमेटी ही नहीं, सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह के प्रमुख सलाहकारों में अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने नेहरू, शास्त्री और इंदिरा गांधी युग की तरह देश के गांवों में न्यूनतम मजदूरी देकर अथवा श्रमदान करवाकर कच्ची-सड़कें बनवाने, कुएं-तालाब खुदवाने, पेड़ लगवाने जैसे कार्यक्रमों के लिए कार्यकर्ता क्यों नहीं तैयार किए। चिदंबरम साहब तो तुनकमिजाजी और 'जनता-जनार्दन' से कटे हुए हैं लेकिन जयराम रमेश तो भाजपा, समाजवादी, कम्युनिस्ट पार्टियों के नेताओं से ही नहीं, मेधा पाटकर, अण्णा हजारे से जुड़े स्वयंसेवी संगठनों के लोगों से भी रिश्ते बनाए हुए हैं। वे अपनी ही सरकार की अच्छी रोजगार योजना का उपयोग सही ढंग से खुदाई और मिट्टी भरवाई के लिए करवाने का अभियान क्यों नहीं चलाते। सदस्य संख्या के नाम पर सबसे बड़े राजनीतिक दल होने का दावा कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टियां भी करती हैं। यदि सचमुच उनके पास पांच-दस करोड़ सदस्य कार्यकर्ता हैं तो गांव कैसे दिशाहीन रह सकते हैं। इंदिरा युग में रायबरेली-अमेठी का कायाकल्प श्रमदान शिविरों से ही हुआ था और ग्रामीणों को मजदूरी भी नहीं देनी पड़ी थी। अब गांवों की हालत सुधारने के लिए न्यूनतम मजदूरी और श्रमदान के संयुक्त प्रयास की बागडोर राजनीतिक या स्वयंसेवी संगठन क्यों नहीं उठा सकते? आखिरकार, गांवों में सड़क, स्कूल, प्राथमिक चिकित्सा केंद्र की व्यवस्था होगी तभी तो चीन की तरह आपके 'कुशल कारीगर' तैयार करने की कोई योजना सफल हो सकेगी। 'स्किल डेवलपमेंट योजना' के तहत एक हजार या पांच हजार करोड़ रुपए का बजट रखकर आप बड़ी औद्योगिक कंपनियों के लिए कारीगर तैयार करने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन उससे बड़ी जरूरत सर्वांगीण ग्रामीण विकास की है। विभिन्न राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टियों के नेता या उनके सहयोगी यदि गांधी, नेहरू, विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, दीनदयाल उपाध्याय, राममनोहर लोहिया, नंबूदिरिपाद, ज्योति बसु के फोटो लगाकर उनका स्मरण करते हैं तो उन्हें सत्ता के रचनात्मक उपयोग को समझने में दिक्कत क्यों होनी चाहिए? ग्रामीण इलाकों में सही उद्देश्य के लिए खुदाई के साथ मजदूरी मिलेगी तो गांवों की हालत भी सुधरेगी। दो-तीन वर्ष पहले जयराम रमेश के युवा साथी राहुल गांधी के श्रमदान करते फोटो समाचार माध्यमों में बहुत चमके थे। अब वे अपने हजारों साथियों को श्रमदान और मजदूरी के सही भुगतान की गारंटी के काम में क्यों नहीं लगा सकते हैं? ग्रामीण मजदूरों की अपनी मजबूरियां हैं लेकिन राजनीतिक-सामाजिक नेतृत्वकर्ताओं के पास दूरदर्शी कार्यक्रम तो हो सकते हैं।

alokmehta@nationalduniya.com